दलीय राजनीति से तटस्थ है स्वास्थ्य तंत्र का विकास

देश की 'पॉलिटिकल पार्टीज़ के अंदर 'इंटरनल कंसल्टेशन' का एक औपचारिक सिस्टम जो अब खत्म हो चुका है, एक जमाने में पूरे सम्मान से जिंदा था। ई.सन 1930 में लाहौर के कांग्रेस पार्टी के अधिवेशन से ही कंसलटेशन जैसे विशिष्ट कार्यों को देखने और उनकी एक योजना तैयार करने के लिए पार्टी के अंदर के उच्च शिक्षा प्राप्त विशेषज्ञों को लेकर अनेक समितियां बनाई गई थीं, जैसे कि स्वस्थ्य पर। इन समितियों ने शानदार काम किया जिसकी रिपोर्ट इंटरनेट से डाउन लोड करके मैंने। इसे ब्रिटिश इंडियन गवर्नमेंट का पूरा सपोर्ट प्राप्त था।

पॉलिटिकल पार्टी का ध्येय राजनैतिक सत्ता (पॉलिटिकल गवर्नेंस) हासिल करना होता है। उदाहरण के लिए मोदी जी पहली बार संघीय सरकार में आए और आए भी तो जूनियर मंत्री से नहीं बल्कि प्रधान मंत्री के पदभार से शुरुआत की। इनके लिए पॉलिटिकल पार्टी सिर्फ ऐसे 'स्कीबोर्ड' प्लेटफॉर्म की तरह रही जहां चढ़कर ऊंचे पद पर अर्थात भारत देश के चीफ एक्सिक्यूटिव पद पर विराजमान हुये। राजनैतिक सरकार जब संवैधानिक शक्ति लेकर काम करना शुरू करती है तो पॉलिटिकल पार्टी के एजेंडे कहीं, बहुत पीछे छूट जाते हैं लेकिन इनके गहरे पैठे (डीपली एम्बेड) प्रभाव से इसे ही चीफ एक्सिक्यूटिव और कैबिनेट एक तरह का सरकारी कार्यक्रम बना देते हैं। आभासीत होता है कि पार्टी की अंदरूनी बौद्धिक विमर्श प्रक्रिया का यह अंग नहीं है बल्कि उन दो तीन शीर्ष नेताओं (नरेंद्र मोदी जी और अमित शाह जी) की अपनी गहरी अवधारणाओं में परिलक्षित होने वाले एजेंडे का ही प्रतिरूप है। ऐसे में पॉलिटिकल पार्टी में कंसल्टेशन की अंदरूनी प्रक्रिया त्याज्य होकर शासकीय प्रक्रिया से रिपलेस हो जाती है।

शासकीय प्रक्रिया में संसदीय प्रक्रियायें इसकी विभिन्न कंसल्टेटिव, स्टैंडिंग और सिलेक्ट कमेटियों और इनके सचिवालय या संसदीय कार्यदलों (टास्क फोर्स) द्वारा सम्पन्न होती हैं। इस प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले मंत्रालयों की देख-रेख में काम करने वाले सैंकड़ों संस्थानों की विशेषज्ञ कमेटियों से कंसल्टेशन लेने की प्रक्रिया पूरी करनी होती है। इनमें पॉलिटिकल, डिप्लोमेटिक, सोशल, साईंटिफ़िक और टेक्निकल विषयों के ज्ञाताओं के विशेषज्ञों को नियमित नियुक्ति दी जाती है। इसके बाद सम्बद्ध मन्त्रालय विषय-संबन्धित कैबिनेट नोट बनाकर कैबिनेट सेक्रेटरियट को प्रोसैस करने के लिए भेजता है जिसकी विद्वत समीक्षा के बाद इसे प्रधान मंत्री कार्यालय भेजा जाता है। प्रधान मंत्री चाहे तो विषय-विशेषज्ञ को बुलवाकर जुबानी ब्रीफिंग देने का आग्रह भी कर सकता है। इस तरीके से कोई यह कहे कि मोदी जी अपनी मर्ज़ी चला रहे हैं और देश को गलत दिशा में ले जाने का प्रयास करते रहे हैं या फिर 'पोलिटिकली मोटिवेटेड स्कीम्स' पर या 'पोप्युलिस्ट स्कीम्स' पर पैसा बर्बाद कर रहे हैं, अधिकांश मामलों में गैरमुमकिन प्रतीत होता है। इस मामले में न तो पॉलिटिकल पार्टी का अपना सूचना तंत्र और न ही सरकार का विशाल सूचना तंत्र जो प्रैस इन्फोर्मेशन ब्यूरो (पीआईबी) की मार्फत काम करता है, ठीक से जनसाधारण और मीडिया को सूचना दे पाता है, जबकि यह काम करने के लिए वे पूरी तरह सक्षम हैं। मुझे यह भी लगता है कि पी.आई.बी. के चीफ और सूचना और प्रसारण मंत्री को भी इस मामले में पूरा आभास नहीं होता कि हमारे माननीय प्रधानमंत्री जी के मन में क्या चल रहा है या किसी महत्वपूर्ण मामले में उनकी मनःस्थिति क्या है। मैं समझता हूं कि वर्षों से स्थापित यह सूचना-तंत्र ऐसी स्थिति में हमेशा एक 'अंडर इन्फॉर्म्ड' जैसी नियति से जूझता रहता है।

हमारे प्रधान मंत्री ने 'मन की बात' के 100 एपिसोड पूरे कर लिए हैं। सो, आम मुद्दों पर इनकी मनःस्थिति की

वाकिफीयत हमें परोक्ष तरीके से होती रही है न कि विगत में नियमित तौर से आयोजित किए जाने वाली प्रेस कॉन्फ्रेंस के जरिये। इस मामले में मोदी जी ने विगत के अनेक मिथक अपनी सीधी-सादी कार्यनीति से बदले हैं। इनके व्यक्तित्व की 'साईको-प्रोफाईलिंग' कीजिये। कोई विसंगति नज़र आती है? जो लोग पहले की कार्य-प्रणाली की आदत डाले हुये थे, उनका असहज होकर गैर-मामूली टिप्पणी करना कोई अनहोनी या अस्वाभाविक प्रतिक्रिया नहीं है। सोशल मीडिया पर तो मोदी जी की कार्य प्रणाली को लेकर तीखी आलोचना होती रहती है। लेकिन यह ध्यान में रखने की बात है कि प्रधान मंत्री की कुर्सी जो संभालता है उसका 'एवल्यूशन' भी होता है। दैनंदिन के कार्य निपटाने में तो सचिवालय का तंत्र सहायक होता है लेकिन देश की प्रतिष्ठा और विशेष मामलों या एमर्जेंसी होने पर एक ऐसे कूटनैतिक मसले पर निर्णय लेने के लिए जिसके दीर्घकाल में बड़े असर होते हैं, प्रधान मंत्री के 'बाणे' और पद को संभालने वाले व्यक्ति का विवेक विशेष रूप से सक्रिय और उत्कृष्ट होना चाहिए। ऐसे निर्णयों को विशिष्ट छाप देने के लिए भी कंसल्टेंसी का एक मैकेनिज़्म सरकारी तंत्र के भीतर मौज़ूद होता है जैसे कि गृह विभाग, इंटेलिजेंस ब्यूरो और 'रॉ' (रिसर्च एंड एनालिसिस विंग) के चीफ या प्रधान मंत्री के वैज्ञानिक और सेक्यूर्टी सलाहकार। ऐसे में प्रधान मंत्री किस पॉलिटिकल पार्टी से आते हैं या इस पार्टी की आईडियोलॉजि क्या है, विशेष माने नहीं रखती।

उदाहरण के लिए प्रधान मंत्री भारतीय जनौषधि परियोजना और प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना को समझने का प्रयास कीजिये। 'आलोचना करनी है', क्योंकि मुझे अमुक राजनैतिक दल या अमुक व्यक्ति जो सत्तासीन है, मुझे पसंद नहीं, ऐसा सोचकर गैर जिम्मेदाराना दृष्टिकोण से कुछ भी कह और लिख पर प्रसारित करने से जनविचार परिपक्व न होकर मात्र भ्रमित होता है। 'फील्ड इंवेस्टिगेशन' या तल तक पहुंचकर या परतें उघाड़कर देखने के बाद अगर अर्जित अनुभव का इस्तेमाल न करेंगे तो कुछ भी कहना और लिखना एक दुष्प्रचार से कम नहीं। एक रजिस्टर्ड सोसाइटी के रूप में जनौषधि परियोजना की अपनी वैबसाइट है । ग्राम सड़क परियोजना बेशक सन 2000 के दिसंबर महीना में आरंभ की गई लेकिन इसके बारे में मिनिस्ट्री ऑफ रुरल डेव्लपमेंट, भारत सरकार की वैबसाइट पर सूचना उपलब्ध है। सूचना तंत्र में तथ्य और तटस्थता के अलावा 'टाइमिंग' बहुत महत्वपूर्ण घटक होते हैं। सोशम मीडिया पर जिस फ्रीडम से लोग लिखते हैं, उसका डाटा और एनालिसिस ऐसे लोगों के काम आता है जिन्हें भारत की छवि के लगातार आकलन की जरूरत पड़ती है। जानकार आश्चर्य होगा कि यूरोप और अमरीका के अनेक सम्पन्न देश और वैश्विक अंतरराष्ट्रीय एजेंसीज़ जैसे कि वर्ल्ड बैंक, कनाडा और स्वीडन के विदेश सहायता मंत्रालय सभी हमारे सोशल मीडिया के डाटा के ग्राहक हैं जिसे फेस बुक, गूगल और ट्विट्टर नियमित तौर से खूब पैसे लेकर सुलभ कराते हैं। इससे भारत में काम करने वाली भारतीय और विदेशों में रजिस्टर्ड मल्टी-नेशनल एन.जी.ओ. को ग्रांट देने से पहले इस डाटा की एनालिसिस को जरूरी तौर से ऐसे घटक के रूप में देखते हैं जो निर्णय लेने में सहायक है।

ई. सन 2015 में प्रकाशित एक ऐसा पर्चा कुछ रोज़ पहले मैं देख रहा था जिसके निष्कर्ष यह बता रहे थे कि भारत में अस्पतालों में चिकित्सा परामर्श लेने के लिए आने वाले मरीजों और इनके अभिभावकों द्वारा किए जाने वाले अतिरिक्त खर्चे जैसे कि पार्किंग फीस, व्हील चेयर और ट्रॉली का किराया, चाय-नाश्ता, घर से अस्पताल आने का भाड़ा वगैरह को कैसे कम किया जा सकता है। भारत की आधी आबादी के लिए ऐसे वित्तीय बोझ जिन्हें 'आउट ऑफ पॉकेट' और 'कैटेसट्रॉफिक एक्सपेंडिचर' कहा गया कैसे समाप्त किए जा सकते हैं और कैसे जेनेरिक दवा को निशुल्क देकर मरीज पर होने वाले आवश्यक खर्चे के बोझ को कम किया जा सकता है? हैल्थ

सिस्टम्स रिसर्च के अंतर्गत किए ऐसे अध्ययनों की महता को समझ कर प्रांतीय शासन के अधीन काम करने वाले मेडिकल कॉलेज, पीजीआई और कम्यूनिटी एवं प्राइमरी हैल्थ सेंटर्स परिसरों को प्रधान मंत्री के पहल पर ही पुनः व्यवस्थित किया गया और जनौषधलयों की मार्फत औषधियों का निशुल्क वितरण किया जाने लगा। मुझे भी कुछेक बार पीजीआई, रोहतक में चिकित्सीय परामर्श के लिए आने के बाद निशुल्क दवा दी गई है। वेबसाइट पर इसके बारे आधिकारिक और अधिक जानकारी उपलब्ध है। इसी तरह से शासकीय और गैर-शासकीय स्वास्थ्य सेवाओं में परामर्श और अंतरंग चिकित्सा हेतु डॉक्टरों द्वारा ली जाने वाली 'कंसल्टेंसी फीस' में न केवल भारत में ही बल्कि दुनिया के सभी देशों में अंतर देखने को मिलता है। इस अंतर के औचित्य का मूल्यांकन हम स्टेटिस्टिकल या गणितीय नज़रिये से नहीं करें तो अच्छा है और इसे एक मिथक-भंजक के रूप में भी इस्तेमाल करने से गुरेज करें। पूरी तरह से कमर्शियल आई.ओ.एस.आर. जरनल्स कंपनी के 'जर्नल ऑफ डेंटल एंड मेडिकल साइन्सेस' में 'कंसलटेशन फीस ऑफ इंडियन डॉक्टर्स -द मिथ डीमिस्टीफ़ाईड' जैसे अध्ययन इस ओर इशारा मात्र करते हैं, कहानी बहुत बड़ी है।

स्वास्थ्य सेवाओं में प्रति मरीज के हिसाब से होने वाले खर्चे (कॉस्ट पर यूनिट) का आकलन चीन, किर्घिज़, कांगो, पाकिस्तान के अलावा कुछेक उन्नत देशों द्वारा किया गया है लेकिन भारत से इनकी तुलना करने से पहले यह समझना जरूरी है की किसी देश में स्वास्थ्य सेवाओं का एवल्यूशन कैसे हुआ है और इनके तंत्र में पारंपरिक और लोक-चिकित्सा पद्धतियों -यथा आयुर्वेद एवं सिद्ध, तिब्बिया और यूनानी, होम्योपैथी और मॉडर्न मैडिसिन, में वर्तमान दौर कैसा चल रहा है। सिस्टम कैसा भी हो, लेकिन लोगों की आर्थिक पहुंच के भीतर इसे कैसे रखना है और यह एफोर्डेबल कैसे बना कर रखा जा सकता है, यह देश की आर्थिक स्थिति, कैपेसिटी बिल्डिंग और ट्रेनिंग तंत्र को नियंत्रित करने वाली राजनैतिक सत्ता के शीर्ष पर बैठे हुये लोगों के अलावा सत्ता की प्रकृति, जैसे कि लोकतन्त्र, प्रभावित करता है। अध्ययन बताते हैं कि साधनों को पुनर्वितरित करने की संभावना भारत जैसे समाज कल्याण वाले देश में लोकतान्त्रिक प्रणाली से ही संभव है। और, इसमें प्रधान मंत्री या उसकी पॉलिटिकल पार्टी का निजी एजेंडा बड़ी भूमिका नहीं रखता। प्रधानमंत्री भारतीय जनौषधि परियोजना दो समय की सत्ताओं के बीच -2014 से पूर्व और बाद, एक प्रवाहमय योजना (रोलओवर प्रोजेक्ट) का श्रेष्ठ उदाहरण है और हमें इसकी गतिकी अर्थात डायनामिक्स को एक शीर्ष नेता की निजी आलोचना के औचित्य से ऊपर उठकर जरूर देखना चाहिए। ऐसे में क्या भारत का प्रधानमंत्री निरंकुश हो सकता है?